



## आधुनिक जीवन-संदर्भ में श्रीमद्भगवद्गीता के कर्मयोग सिद्धांत का पुनर्मूल्यांकन

डा. ज्योति सिंह

हिंदी विभागाध्यक्ष

रामपाल सिंह सत्यवती देवी मेमोरियल महाविद्यालय, दातागंज, बदायूँ

### सारांश

श्रीमद्भगवद्गीता भारतीय दार्शनिक परंपरा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण ग्रंथ है, जिसमें कर्मयोग को जीवन के व्यावहारिक और नैतिक मार्ग के रूप में प्रस्तुत किया गया है। गीता का कर्मयोग सिद्धांत केवल आध्यात्मिक मोक्ष तक सीमित न होकर मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र—व्यक्तिगत, सामाजिक एवं व्यावसायिक—में संतुलन और कर्तव्यबोध की स्थापना करता है। आधुनिक युग में बढ़ती प्रतिस्पर्धा, मानसिक तनाव, नैतिक मूल्यों का क्षरण तथा भौतिकतावादी दृष्टिकोण ने मानव जीवन को अधिक जटिल बना दिया है। ऐसे परिवेश में कर्मयोग की पुनर्व्याख्या अत्यंत आवश्यक प्रतीत होती है। प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य गीता के कर्मयोग सिद्धांत का आधुनिक जीवन-संदर्भ में पुनर्मूल्यांकन करना और उसकी समकालीन प्रासंगिकता को स्पष्ट करना है।

**बीजक शब्द :** श्रीमद्भगवद्गीता, कर्मयोग, निष्काम कर्म, आधुनिक जीवन, जीवन-प्रबंधन

### 1. भूमिका

श्रीमद्भगवद्गीता का स्थान भारतीय दार्शनिक परंपरा में अत्यंत विशिष्ट एवं केन्द्रीय है। यह ग्रंथ केवल धार्मिक आस्था का प्रतीक न होकर मानव जीवन के समग्र विकास का दार्शनिक मार्गदर्शन प्रदान करता है। महाभारत के भीष्मपर्व में स्थित गीता अर्जुन और श्रीकृष्ण के संवाद के माध्यम से कर्म, ज्ञान और भक्ति के समन्वित दर्शन को प्रस्तुत करती है। विशेषतः कर्मयोग गीता का वह मूल सिद्धांत है, जो मानव को कर्म करते हुए आत्मिक शुद्धि और जीवन-संतुलन की ओर अग्रसर करता है।

गीता का दर्शन कर्म से पलायन की नहीं, बल्कि कर्म में रहते हुए विवेकपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा देता है। गीता स्पष्ट रूप से कर्म की अनिवार्यता को स्वीकार करती है—

“न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।”

(श्रीमद्भगवद्गीता, 3.5)

इस श्लोक के माध्यम से गीता यह प्रतिपादित करती है कि कर्म मानव जीवन की अपरिहार्य शर्त है। किंतु गीता कर्म को केवल बाह्य क्रिया के रूप में नहीं देखती, बल्कि उसे नैतिकता, कर्तव्य और आत्मबोध से जोड़ती है। यही दृष्टि कर्मयोग को एक उच्च जीवन-दर्शन के रूप में प्रतिष्ठित करती है।

इस संदर्भ में गीता का कर्मयोग सिद्धांत विशेष महत्त्व रखता है। गीता कर्म को फल-आसक्ति से मुक्त करने की शिक्षा देती है—



“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।”

(श्रीमद्भगवद्गीता, 2.47)

यह श्लोक आधुनिक जीवन के लिए अत्यंत प्रासंगिक है, क्योंकि आज का मनुष्य अपने कर्म के परिणामों को लेकर अत्यधिक चिंतित रहता है। फल-आसक्ति ही तनाव, भय और असंतोष का मूल कारण बन जाती है। गीता का कर्मयोग व्यक्ति को यह सिखाता है कि कर्म को कर्तव्य-बोध के साथ किया जाए, न कि केवल फल-लालसा के कारण।

गीता का कर्मयोग केवल व्यक्तिगत मोक्ष तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सामाजिक उत्तरदायित्व और लोककल्याण की भावना को भी महत्त्व देता है—

“लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।”

(श्रीमद्भगवद्गीता, 3.20)

यह दृष्टिकोण आधुनिक लोकतांत्रिक और सामाजिक संरचना के लिए अत्यंत उपयोगी है, जहाँ व्यक्ति का कर्म समाज को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करता है। इस प्रकार कर्मयोग व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के बीच संतुलन स्थापित करता है।

आधुनिक संदर्भ में यह आवश्यक हो जाता है कि कर्मयोग को केवल आध्यात्मिक उपदेश के रूप में न देखकर, जीवन-प्रबंधन, कार्य-संस्कृति, नैतिक नेतृत्व और मानसिक स्वास्थ्य के संदर्भ में पुनर्व्याख्यायित किया जाए। इसी आवश्यकता के परिणामस्वरूप प्रस्तुत शोध-पत्र में श्रीमद्भगवद्गीता के कर्मयोग सिद्धांत का आधुनिक जीवन-संदर्भ में पुनर्मूल्यांकन किया गया है।

अतः यह भूमिका इस तथ्य को स्पष्ट करती है कि गीता का कर्मयोग न तो केवल धार्मिक अवधारणा है और न ही किसी एक काल तक सीमित सिद्धांत, बल्कि वह आधुनिक मानव जीवन की जटिलताओं को समझने और समाधान प्रस्तुत करने वाला एक सार्वकालिक जीवन-दर्शन है।

## 2. शोध-समस्या एवं उद्देश्य

### 2.1 शोध-समस्या

आधुनिक युग को प्रायः कर्मप्रधान युग कहा जा सकता है। आज का मनुष्य निरंतर क्रियाशील है—वह कार्यस्थल, समाज और व्यक्तिगत जीवन के विविध दायित्वों से निरंतर जुड़ा हुआ है। इसके बावजूद यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि आधुनिक मानव मानसिक अशांति, तनाव, अवसाद, मूल्यहीनता और उद्देश्यहीनता जैसी समस्याओं से ग्रस्त है। यह विरोधाभासी स्थिति एक मूल दार्शनिक प्रश्न को जन्म देती है—क्या आधुनिक मनुष्य का कर्म उसके जीवन-दर्शन से अलग हो गया है?

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म को जीवन का अनिवार्य तत्व स्वीकार किया गया है—

“न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।”

(गीता 3.5)



गीता यह मानती है कि कर्म से बचना संभव नहीं है, किंतु वह कर्म के स्वरूप और उद्देश्य पर गंभीर प्रश्न उठाती है। आधुनिक जीवन में कर्म प्रायः फल-आसक्ति, प्रतिस्पर्धा, उपभोग और स्वार्थ से प्रेरित हो गया है। इसी कारण कर्म मनुष्य के लिए बंधन का कारण बनता जा रहा है, जबकि गीता का कर्मयोग कर्म को मुक्ति का साधन मानता है।

गीता का केंद्रीय उपदेश है—

**“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।”**

**(गीता 2.47)**

परंतु आधुनिक समाज में इस सिद्धांत को प्रायः अव्यावहारिक, आदर्शवादी अथवा केवल आध्यात्मिक साधना से संबंधित मान लिया गया है। अधिकांश व्याख्याओं में कर्मयोग को संन्यास या मोक्ष-साधना तक सीमित कर दिया गया है, जिससे उसके सामाजिक, व्यावसायिक और मनोवैज्ञानिक पक्ष उपेक्षित रह गए हैं। यही इस शोध की मूल समस्या है।

शोध-समस्या का एक अन्य महत्वपूर्ण पहलू यह भी है कि आधुनिक जीवन की जटिल समस्याओं—जैसे कार्य-दबाव, नैतिक द्वंद्व, सामाजिक उत्तरदायित्व, नेतृत्व संकट और मानसिक तनाव—के समाधान प्रायः पश्चिमी मनोविज्ञान अथवा प्रबंधन सिद्धांतों में खोजे जाते हैं, जबकि भारतीय दार्शनिक ग्रंथों, विशेषतः श्रीमद्भगवद्गीता में निहित समाधानों को अपेक्षाकृत कम महत्व दिया गया है।

अतः मूल शोध-समस्या को इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—  
क्या श्रीमद्भगवद्गीता का कर्मयोग सिद्धांत आधुनिक जीवन की समस्याओं के समाधान में आज भी प्रासंगिक है, और यदि है, तो उसकी पुनर्व्याख्या किस प्रकार की जानी चाहिए?

**2.2 शोध के उद्देश्य**

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य श्रीमद्भगवद्गीता के कर्मयोग सिद्धांत का केवल शास्त्रीय विवेचन करना नहीं है, बल्कि उसे आधुनिक जीवन-संदर्भ में पुनर्मूल्यांकित करना है। इस अध्ययन के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

1. श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित कर्मयोग सिद्धांत की मूल अवधारणा का स्पष्ट एवं समालोचनात्मक अध्ययन करना।
2. कर्मयोग के प्रमुख तत्त्व—कर्म, कर्तव्य, निष्काम भाव और फलत्याग—का दार्शनिक विश्लेषण प्रस्तुत करना।
3. कर्मयोग की पारंपरिक व्याख्याओं (शंकराचार्य, रामानुजाचार्य तथा आधुनिक विचारकों) का संक्षिप्त मूल्यांकन करना।
4. आधुनिक जीवन की प्रमुख समस्याओं—मानसिक तनाव, कार्य-संस्कृति, नैतिक संकट और सामाजिक उत्तरदायित्व—के संदर्भ में कर्मयोग की प्रासंगिकता को स्पष्ट करना।
5. कर्मयोग सिद्धांत की आधुनिक जीवन-प्रबंधन (Life Management) और नैतिक नेतृत्व (Ethical Leadership) के संदर्भ में पुनर्व्याख्या करना।
6. यह प्रतिपादित करना कि गीता का कर्मयोग केवल आध्यात्मिक साधना का मार्ग नहीं, बल्कि एक समग्र जीवन-दर्शन है।



गीता स्वयं कर्मयोग को लोककल्याण से जोड़ती है—

“लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।”

(गीता 3.20)

इस श्लोक के आलोक में शोध का अंतिम उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि कर्मयोग आधुनिक समाज में व्यक्तिगत और सामाजिक संतुलन स्थापित करने का एक प्रभावी साधन हो सकता है।

### 3. शोध-पद्धति

प्रस्तुत शोध-पत्र का उद्देश्य श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित कर्मयोग सिद्धांत का आधुनिक जीवन-संदर्भ में पुनर्मूल्यांकन करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शोध-कार्य में ऐसी पद्धतियों का चयन किया गया है, जो दार्शनिक ग्रंथ के शास्त्रीय अध्ययन के साथ-साथ समकालीन सामाजिक एवं मानसिक संदर्भों के विश्लेषण में सहायक हों। अतः इस शोध में गुणात्मक शोध-पद्धति को आधार बनाया गया है।

#### 3.1 शोध का स्वरूप

यह शोध वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक तथा समालोचनात्मक स्वरूप का है। इसमें श्रीमद्भगवद्गीता के कर्मयोग सिद्धांत का क्रमबद्ध वर्णन, उसकी दार्शनिक व्याख्या का विश्लेषण तथा आधुनिक जीवन-संदर्भ में उसकी आलोचनात्मक पुनर्व्याख्या की गई है। इस अध्ययन का उद्देश्य किसी सांख्यिकीय निष्कर्ष तक पहुँचना नहीं, बल्कि दार्शनिक अवधारणाओं की गहन और सम्यक् समझ विकसित करना है।

#### 3.2 शोध-विधि

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित शोध-विधियों का प्रयोग किया गया है—

##### (क) वर्णनात्मक विधि

इस विधि के अंतर्गत श्रीमद्भगवद्गीता में कर्मयोग की मूल अवधारणा, उससे संबंधित प्रमुख श्लोकों तथा दार्शनिक सिद्धांतों का क्रमबद्ध और स्पष्ट विवरण प्रस्तुत किया गया है।

##### (ख) विश्लेषणात्मक विधि

गीता के कर्मयोग सिद्धांत—कर्म, कर्तव्य, निष्काम भाव और फलत्याग—का दार्शनिक विश्लेषण किया गया है। इसके माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि कर्मयोग किस प्रकार कर्म को बंधन नहीं, बल्कि मुक्ति का साधन बनाता है।

##### (ग) समालोचनात्मक विधि

कर्मयोग की पारंपरिक एवं आधुनिक व्याख्याओं का समालोचनात्मक मूल्यांकन किया गया है, जिससे उनके सीमित और व्यापक दोनों पक्षों को रेखांकित किया जा सके।

##### (घ) तुलनात्मक विधि

कर्मयोग के शास्त्रीय स्वरूप और आधुनिक जीवन-परिस्थितियों—जैसे कार्य-संस्कृति, मानसिक तनाव और नैतिक संकट—के बीच तुलनात्मक अध्ययन किया गया है, जिससे कर्मयोग की समकालीन प्रासंगिकता स्पष्ट हो सके।

### 3.3 स्रोत-सामग्री



## (क) प्राथमिक स्रोत

- श्रीमद्भगवद्गीता (मूल संस्कृत पाठ)
- शंकराचार्य, रामानुजाचार्य एवं माध्वाचार्य की गीता-टीकाएँ

## (ख) द्वितीयक स्रोत

- गीता पर आधारित हिंदी एवं अंग्रेज़ी टीकाग्रंथ
- शोध-पत्र, शोध-प्रबंध और जर्नल लेख
- आधुनिक विचारकों के ग्रंथ—डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, विनोबा भावे, महात्मा गांधी आदि के लेखन

### 3.4 शोध-दृष्टिकोण

इस शोध में अंतर्विषयक दृष्टिकोण अपनाया गया है। दर्शन, साहित्य, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान के दृष्टिकोण से कर्मयोग की विवेचना की गई है, जिससे आधुनिक जीवन की जटिल समस्याओं के संदर्भ में उसका समग्र मूल्यांकन किया जा सके।

### 3.5 शोध-सीमाएँ

यह शोध श्रीमद्भगवद्गीता के कर्मयोग सिद्धांत तक सीमित है। इसमें किसी प्रकार के सांख्यिकीय अथवा क्षेत्रीय सर्वेक्षण को सम्मिलित नहीं किया गया है। आधुनिक जीवन के उदाहरणों को वैचारिक स्तर पर ग्रहण किया गया है, न कि अनुभवजन्य अध्ययन के रूप में।

### 3.6 अपेक्षित निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-पद्धति के माध्यम से यह अपेक्षा की जाती है कि कर्मयोग सिद्धांत को आधुनिक जीवन-संदर्भ में एक व्यावहारिक, नैतिक तथा जीवन-प्रबंधन आधारित दर्शन के रूप में पुनर्स्थापित किया जा सकेगा।

## 4. कर्मयोग की परंपरागत व्याख्याएँ

श्रीमद्भगवद्गीता के कर्मयोग सिद्धांत की व्याख्या भारतीय दार्शनिक परंपरा में विभिन्न दृष्टिकोणों से की गई है। इन व्याख्याओं का आधार संबंधित आचार्यों की दार्शनिक मान्यताएँ रही हैं। मुख्यतः अद्वैत, विशिष्टाद्वैत और द्वैत दर्शन के अंतर्गत कर्मयोग की परंपरागत व्याख्याएँ विकसित हुई हैं। इन व्याख्याओं का अध्ययन आवश्यक है, क्योंकि इनके माध्यम से कर्मयोग के आध्यात्मिक, नैतिक तथा दार्शनिक स्वरूप को गहराई से समझा जा सकता है।

### (क) शंकराचार्य की कर्मयोग-व्याख्या (अद्वैत दर्शन)

आदि शंकराचार्य ने श्रीमद्भगवद्गीता की व्याख्या अद्वैत वेदांत के दृष्टिकोण से की है। उनके अनुसार गीता का परम लक्ष्य ब्रह्मज्ञान के माध्यम से मोक्ष की प्राप्ति है। शंकराचार्य कर्मयोग को स्वतंत्र रूप से मोक्ष प्रदान करने वाला साधन नहीं मानते, बल्कि उसे ज्ञान की प्राप्ति की पूर्व-तैयारी के रूप में स्वीकार करते हैं।

उनके अनुसार कर्म अज्ञान की अवस्था में किया जाता है और इसलिए कर्म स्वयं बंधन का कारण बनता है। अतः मोक्ष केवल ज्ञान के माध्यम से ही संभव है—



“न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।”

(श्रीमद्भगवद्गीता 4.38)

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए शंकराचार्य स्पष्ट करते हैं कि कर्मयोग का महत्व मुख्यतः चित्त-शुद्धि तक सीमित है। निष्काम कर्म के द्वारा व्यक्ति अपने अंतःकरण को शुद्ध करता है और इस प्रकार ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने के योग्य बनता है (शंकराचार्य, गीता भाष्य 2.47)।

उनके शब्दों में—

“कर्मयोगः चित्तशुद्ध्यर्थः, न तु मोक्षसाधनम्।”

(शंकराचार्य, गीता भाष्य)

इस दृष्टि से शंकराचार्य के दर्शन में कर्मयोग ज्ञानयोग का सहायक है, न कि उसका विकल्प।

(ख) रामानुजाचार्य की कर्मयोग-व्याख्या (विशिष्टाद्वैत दर्शन)

रामानुजाचार्य ने कर्मयोग की व्याख्या विशिष्टाद्वैत दर्शन के अंतर्गत की है। उनके अनुसार कर्म, ज्ञान और भक्ति—तीनों ही मोक्ष के साधन हैं, किंतु इन सभी का चरम लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। रामानुजाचार्य कर्मयोग को केवल चित्त-शुद्धि तक सीमित नहीं मानते, बल्कि उसे ईश्वर-समर्पण से जोड़ते हैं।

उनके अनुसार कर्म तभी मुक्तिदायक बनता है, जब वह ईश्वर को समर्पित भाव से किया जाए—

“यत्करोषि यदश्रासि यज्जुहोषि ददासि यत्।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥”

(श्रीमद्भगवद्गीता 9.27)

इस श्लोक की व्याख्या करते हुए रामानुजाचार्य बताते हैं कि कर्मयोग का सार ईश्वरार्पण की भावना में निहित है (गीता भाष्य 9.27)। उनके अनुसार निष्काम कर्म मनुष्य को भक्ति की ओर अग्रसर करता है और अंततः मोक्ष की प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करता है।

(ग) माध्वाचार्य की कर्मयोग-व्याख्या (द्वैत दर्शन)

माध्वाचार्य ने कर्मयोग की व्याख्या द्वैत दर्शन के अंतर्गत की है। उनके अनुसार जीव और ईश्वर सदा भिन्न हैं तथा मोक्ष ईश्वर की कृपा से ही प्राप्त होता है। माध्वाचार्य कर्मयोग को ईश्वर की आज्ञा के पालन के रूप में देखते हैं।

उनके अनुसार—

“स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।”

(श्रीमद्भगवद्गीता 3.35)



Cover Page



इस श्लोक की व्याख्या में माध्वाचार्य यह स्पष्ट करते हैं कि कर्मयोग का मूल तत्व स्वधर्म का पालन है (माध्वाचार्य, गीता तात्पर्य)। इस प्रकार कर्म ईश्वर-सेवा का स्वरूप ग्रहण कर लेता है और उसी के माध्यम से जीव ईश्वर की कृपा प्राप्त करता है।

### (घ) परंपरागत व्याख्याओं का समालोचनात्मक मूल्यांकन

इन तीनों परंपरागत व्याख्याओं में कर्मयोग को आध्यात्मिक उन्नति से जोड़ा गया है, किंतु इनके दृष्टिकोणों में स्पष्ट भिन्नता दिखाई देती है। शंकराचार्य कर्मयोग को ज्ञान की प्राप्ति का साधन मानते हैं, रामानुजाचार्य उसे भक्ति से संबद्ध करते हैं, जबकि माध्वाचार्य कर्मयोग को ईश्वर-आज्ञा पालन के रूप में व्याख्यायित करते हैं।

इन सभी व्याख्याओं की एक सामान्य सीमा यह है कि कर्मयोग को प्रायः मोक्ष-साधना तक ही सीमित कर दिया गया है। आधुनिक जीवन के सामाजिक, व्यावसायिक और मनोवैज्ञानिक संदर्भ इन परंपरागत व्याख्याओं में अपेक्षाकृत गौण रह गए हैं। इसी कारण आधुनिक संदर्भ में कर्मयोग की पुनर्व्याख्या आवश्यक प्रतीत होती है।

### 5. आधुनिक जीवन-संदर्भ

आधुनिक युग तीव्र परिवर्तन, भौतिक उन्नति और निरंतर सक्रियता का युग है। विज्ञान, तकनीक और औद्योगिक विकास ने मानव जीवन को अनेक सुविधाएँ प्रदान की हैं, किंतु इसके साथ-साथ मानसिक अशांति, नैतिक संकट और जीवन-मूल्यों के क्षरण जैसी गंभीर समस्याएँ भी उत्पन्न हुई हैं। आधुनिक मानव की सबसे बड़ी विडंबना यह है कि वह निरंतर कर्मरत रहते हुए भी संतोष, शांति और आत्मिक संतुलन का अनुभव नहीं कर पा रहा है। ऐसे समय में श्रीमद्भगवद्गीता का कर्मयोग सिद्धांत आधुनिक जीवन की जटिलताओं को समझने और उनके समाधान की दिशा में महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान करता है।

गीता कर्म को जीवन की अनिवार्य अवस्था मानती है—

“न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।”

(श्रीमद्भगवद्गीता 3.5)

यह श्लोक स्पष्ट करता है कि कर्म से पलायन संभव नहीं है, किंतु कर्म की भावना और दृष्टिकोण ही उसके परिणाम को निर्धारित करते हैं। आधुनिक जीवन के संदर्भ में यही वह बिंदु है, जहाँ कर्मयोग की पुनर्व्याख्या की आवश्यकता अनुभव होती है।

#### 5.1 आधुनिक मानव की समस्याएँ

आधुनिक मानव की समस्याएँ केवल बाह्य परिस्थितियों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे मानसिक और भावनात्मक स्तर पर अधिक गहन हो गई हैं। आज का मनुष्य भौतिक उपलब्धियों, आर्थिक प्रगति और सामाजिक प्रतिष्ठा की निरंतर दौड़ में संलग्न है, किंतु इसके बावजूद वह तनाव, असंतोष, भय, अवसाद और उद्देश्यहीनता से ग्रस्त दिखाई देता है। इसका मूल कारण यह है कि आधुनिक जीवन में कर्म को केवल फल-प्राप्ति और स्वार्थ-सिद्धि का साधन मान लिया गया है।



Cover Page



श्रीमद्भगवद्गीता कर्म की अनिवार्यता को स्वीकार करते हुए कहती है—

“नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।”

(श्रीमद्भगवद्गीता 3.8)

यह श्लोक यह संकेत करता है कि कर्म जीवन की आवश्यकता है, किंतु जब कर्म राग और द्वेष से प्रेरित हो जाता है, तब वह मानसिक बंधन का कारण बनता है। सफलता की स्थिति में अहंकार और असफलता में निराशा आधुनिक मानव की सामान्य मानसिक स्थिति बन गई है। गीता इस प्रवृत्ति को बंधन का कारण मानती है—

“रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।”

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.64)

आधुनिक मानव की एक प्रमुख समस्या यह भी है कि वह अपने कर्म के परिणामों को लेकर निरंतर चिंतित रहता है, जिससे वह वर्तमान कर्म से विमुख हो जाता है। गीता इस मानसिक प्रवृत्ति से मुक्त होने की शिक्षा देती है—

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।”

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.47)

भारतीय दार्शनिक परंपरा के अनुसार, जब कर्म निष्काम भाव से किया जाता है, तब वह मानसिक शांति और आत्मिक संतुलन का माध्यम बन जाता है। आधुनिक मानव की अनेक समस्याओं का समाधान इसी निष्काम कर्म की अवधारणा में निहित है।

## 5.2 कार्य-संस्कृति और नैतिक संकट

आधुनिक जीवन का एक महत्वपूर्ण पक्ष कार्य-संस्कृति है। औद्योगीकरण, नगरीकरण और संस्थागत व्यवस्थाओं ने कार्यक्षेत्र को अत्यधिक प्रतिस्पर्धात्मक बना दिया है। आज कार्य का मूल्यांकन प्रायः लाभ, उत्पादन और लक्ष्य-पूर्ति के आधार पर किया जाता है। इस प्रक्रिया में नैतिक मूल्यों—जैसे कर्तव्यनिष्ठा, ईमानदारी और सामाजिक उत्तरदायित्व—की उपेक्षा होने लगी है।

श्रीमद्भगवद्गीता कर्म को नैतिकता से अलग नहीं करती, बल्कि उसे स्वधर्म से जोड़ती है—

“स्वधर्मो निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।”

(श्रीमद्भगवद्गीता 3.35)

यह श्लोक आधुनिक कार्य-संस्कृति के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है, क्योंकि यह व्यक्ति को अपने कर्तव्य और नैतिक उत्तरदायित्व के प्रति सजग करता है। लक्ष्य-प्राप्ति की अंधी दौड़ में व्यक्ति अनेक बार अनैतिक साधनों को अपनाने के लिए विवश हो जाता है, जिससे नैतिक संकट उत्पन्न होता है।

गीता कर्म को लोककल्याण से जोड़ते हुए कहती है—

“लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।”

(श्रीमद्भगवद्गीता 3.20)



Cover Page



इस दृष्टिकोण से कर्मयोग कार्य-संस्कृति को केवल व्यक्तिगत लाभ तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उसे सामाजिक उत्तरदायित्व से जोड़ता है। जब कर्म सेवा और कर्तव्य-बोध के साथ किया जाता है, तब वह नैतिक रूप से सार्थक बन जाता है। आधुनिक कार्य-संस्कृति में कर्मयोग का यह दृष्टिकोण व्यक्ति को कार्य-दबाव, नैतिक द्वंद्व और मानसिक तनाव से मुक्त कर संतुलित जीवन की ओर अग्रसर कर सकता है।

## 6. आधुनिक जीवन में कर्मयोग की प्रासंगिकता

आधुनिक जीवन की जटिल और चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों में श्रीमद्भगवद्गीता का कर्मयोग सिद्धांत एक व्यावहारिक, नैतिक तथा संतुलित जीवन-दर्शन के रूप में विशेष महत्त्व रखता है। आज का मानव निरंतर कर्मरत तो है, किंतु उसका कर्म प्रायः फल-आसक्ति, प्रतिस्पर्धा और स्वार्थ से प्रेरित हो गया है। परिणामस्वरूप कर्म मनुष्य को मुक्त करने के स्थान पर उसे मानसिक और नैतिक बंधनों में जकड़ देता है। गीता का कर्मयोग इस समस्या का सार्थक समाधान प्रस्तुत करता है, क्योंकि वह कर्म को केवल व्यक्तिगत लाभ तक सीमित न रखकर उसे कर्तव्य, सेवा और लोककल्याण से जोड़ता है। गीता का मूल संदेश यह है कि कर्म से पलायन समाधान नहीं है, बल्कि कर्म को सही दृष्टिकोण और भावना के साथ करना ही जीवन का उद्देश्य होना चाहिए—

“नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।”

(श्रीमद्भगवद्गीता 3.8)

इसी आधार पर कर्मयोग की प्रासंगिकता को व्यक्तिगत, सामाजिक तथा व्यावसायिक एवं प्रशासनिक क्षेत्रों में समझा जा सकता है।

### 6.1 व्यक्तिगत जीवन में कर्मयोग की प्रासंगिकता

व्यक्तिगत जीवन में आधुनिक मानव की सबसे गंभीर समस्या मानसिक असंतुलन, तनाव और असंतोष है। व्यक्ति अपने कर्मों के परिणामों को लेकर निरंतर चिंतित रहता है। सफलता प्राप्त होने पर अहंकार और असफलता की स्थिति में निराशा उसे मानसिक रूप से दुर्बल बना देती है। गीता इस स्थिति को कर्म का विकृत रूप मानती है।

कर्मयोग व्यक्ति को फल-आसक्ति से मुक्त होकर कर्म करने की शिक्षा देता है—

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।”

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.47)

इस सिद्धांत को अपनाकर व्यक्ति अपने कर्म को केवल सफलता प्राप्त करने का साधन न मानकर कर्तव्य और आत्मिक विकास का माध्यम बना सकता है। जब कर्म निष्काम भाव से किया जाता है, तब वह मानसिक शांति, आत्म-संतोष और आंतरिक स्थिरता प्रदान करता है। गीता व्यक्ति को राग-द्वेष से ऊपर उठने का मार्ग दिखाती है—

“रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।”

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.64)



इस प्रकार कर्मयोग व्यक्तिगत जीवन में आत्मसंयम, संतुलन और नैतिकता की स्थापना करता है। आधुनिक जीवन की निरंतर भागदौड़ में यह दृष्टिकोण व्यक्ति को मानसिक स्थिरता और आंतरिक शांति प्रदान करता है।

### 6.2 सामाजिक जीवन में कर्मयोग की प्रासंगिकता

आधुनिक समाज में सामाजिक संबंधों में स्वार्थ, असहिष्णुता और विघटन की प्रवृत्ति तीव्र होती जा रही है। व्यक्ति अपने अधिकारों के प्रति तो अत्यधिक सजग है, किंतु अपने कर्तव्यों के प्रति उदासीन होता जा रहा है। गीता का कर्मयोग इस सामाजिक असंतुलन को दूर करने का मार्ग प्रस्तुत करता है।

गीता कर्म को समाज और लोककल्याण से जोड़ती है—

**“लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।”**

#### (श्रीमद्भगवद्गीता 3.20)

यह श्लोक स्पष्ट करता है कि कर्मयोग का उद्देश्य केवल व्यक्तिगत मुक्ति नहीं, बल्कि सामाजिक संतुलन और लोकहित की स्थापना भी है। जब व्यक्ति अपने सामाजिक दायित्वों का निर्वहन निष्काम भाव से करता है, तब समाज में सहयोग, सहिष्णुता और समरसता का विकास होता है।

कर्मयोग सामाजिक जीवन में सेवा, त्याग और उत्तरदायित्व की भावना को प्रोत्साहित करता है। यह दृष्टि व्यक्ति को समाज से जोड़ती है और सामाजिक विघटन को रोकने में सहायक सिद्ध होती है।

### 6.3 व्यावसायिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र में कर्मयोग की प्रासंगिकता

आधुनिक व्यावसायिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र अत्यधिक प्रतिस्पर्धा, दबाव और लक्ष्य-केन्द्रित दृष्टिकोण से प्रभावित हैं। लाभ, पद और प्रतिष्ठा को सर्वोच्च प्राथमिकता देने के कारण नैतिक मूल्यों का निरंतर क्षरण हो रहा है। इस संदर्भ में कर्मयोग एक सशक्त नैतिक मार्गदर्शन प्रदान करता है।

गीता कर्म को स्वधर्म और नैतिकता से जोड़ती है—

**“स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।”**

#### (श्रीमद्भगवद्गीता 3.35)

यह श्लोक प्रशासनिक और व्यावसायिक कर्म के लिए अत्यंत प्रासंगिक है, क्योंकि यह व्यक्ति को अपने दायित्वों का ईमानदारी, निष्ठा और उत्तरदायित्व के साथ पालन करने की प्रेरणा देता है। कर्मयोग नेतृत्व में अहंकार के स्थान पर सेवा-भाव और नैतिक उत्तरदायित्व की भावना को स्थापित करता है।

गीता के अनुसार श्रेष्ठ व्यक्ति का आचरण समाज के लिए आदर्श बनता है—

**“यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।”**

#### (श्रीमद्भगवद्गीता 3.21)

इस दृष्टि से कर्मयोग व्यावसायिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र में नैतिक नेतृत्व, पारदर्शिता और सामाजिक उत्तरदायित्व को सुदृढ़ करता है। कर्मयोग के माध्यम से कार्य केवल व्यक्तिगत लाभ का साधन न रहकर समाज-कल्याण का प्रभावी माध्यम बन सकता है।



## 7. कर्मयोग सिद्धांत का पुनर्मूल्यांकन

श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित कर्मयोग सिद्धांत केवल आध्यात्मिक साधना या मोक्ष-प्राप्ति का मार्ग मात्र नहीं है, बल्कि यह जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में मार्गदर्शन प्रदान करने वाला एक समग्र जीवन-दर्शन है। परंपरागत व्याख्याओं में कर्मयोग को प्रायः मोक्ष-साधना या भक्ति के सहायक साधन के रूप में देखा गया है, जबकि आधुनिक जीवन में कर्म का स्वरूप अत्यंत व्यापक, जटिल और बहुआयामी हो चुका है। आज का मानव केवल अपने व्यक्तिगत जीवन तक सीमित नहीं है, बल्कि वह सामाजिक, व्यावसायिक और प्रशासनिक दायित्वों से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। ऐसी स्थिति में कर्मयोग का पुनर्मूल्यांकन समय की अनिवार्य आवश्यकता बन जाता है।

गीता कर्म की अपरिहार्यता को स्पष्ट रूप से स्वीकार करती है—

“न हि कश्चित् क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।”

(श्रीमद्भगवद्गीता 3.5)

यह श्लोक स्पष्ट करता है कि कर्म से बचना संभव नहीं है। आधुनिक जीवन में मनुष्य निरंतर कर्मरत है, किंतु उसका कर्म प्रायः केवल फल-लाभ, पद, प्रतिष्ठा और स्वार्थ की प्राप्ति तक सीमित हो गया है। इसी संदर्भ में गीता का मूल उपदेश—निष्काम भाव से कर्म करना—अत्यंत प्रासंगिक और मार्गदर्शक सिद्ध होता है।

### 7.1 परंपरागत व्याख्याओं से भिन्न आधुनिक दृष्टि

भारतीय दार्शनिक परंपरा में कर्मयोग की विभिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत की गई हैं, जिनका आधार संबंधित आचार्यों की दार्शनिक मान्यताएँ रही हैं।

**शंकराचार्य** (अद्वैत दर्शन) के अनुसार कर्मयोग का उद्देश्य चित्त-शुद्धि है, जिससे व्यक्ति ब्रह्मज्ञान के योग्य बन सके। वे कर्मयोग को स्वतंत्र मोक्ष-साधन नहीं मानते—

“कर्मयोगः चित्तशुद्ध्यर्थः, न तु मोक्षसाधनम्।”

(शंकराचार्य, गीता भाष्य 2.47)

**रामानुजाचार्य** (विशिष्टाद्वैत दर्शन) कर्मयोग को ईश्वर-समर्पण से जोड़ते हैं। उनके अनुसार जब कर्म निःस्वार्थ भाव से भगवान को अर्पित किया जाता है, तब वह मुक्तिदायक बनता है—

“यत्करोषि यदश्रासि यज्जुहोषि ददासि यत्।

यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥”

(श्रीमद्भगवद्गीता 9.27)

**माध्वाचार्य** (द्वैत दर्शन) के अनुसार जीव और ईश्वर सदा भिन्न हैं तथा कर्मयोग ईश्वर की कृपा प्राप्त करने का साधन है। वे स्वधर्म-पालन को कर्मयोग का मूल तत्व मानते हैं—

“स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।”

(श्रीमद्भगवद्गीता 3.35)



इन परंपरागत व्याख्याओं की एक सामान्य सीमा यह है कि कर्मयोग को मुख्यतः मोक्ष-साधना तक सीमित कर दिया गया है। सामाजिक, व्यावसायिक और मानसिक जीवन के संदर्भ अपेक्षाकृत गौण रह गए हैं। जबकि आधुनिक मानव जीवन में कर्म का स्वरूप कहीं अधिक व्यापक और व्यवहारिक हो गया है।

आधुनिक दृष्टि से कर्मयोग केवल मोक्ष-साधना नहीं, बल्कि व्यक्तिगत जीवन-संतुलन, सामाजिक उत्तरदायित्व और नैतिक नेतृत्व का प्रभावी माध्यम बन सकता है। गीता का निष्काम कर्म इस संदर्भ में स्पष्ट मार्गदर्शन प्रदान करता है—

**“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।”**

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.47)

### 7.2 आधुनिक जीवन-प्रबंधन में कर्मयोग

आधुनिक जीवन में व्यक्ति निरंतर दबावों, प्रतिस्पर्धा और निर्णय-संकटों से घिरा हुआ है। मानसिक अशांति, तनाव और कार्य-दबाव आज के जीवन की सामान्य समस्याएँ बन चुकी हैं। कर्मयोग इन परिस्थितियों में जीवन-प्रबंधन का एक सशक्त आधार प्रस्तुत करता है।

**व्यक्तिगत जीवन में**, निष्काम कर्म व्यक्ति को राग-द्वेष से मुक्त कर मानसिक संतुलन और आंतरिक शांति प्रदान करता है—

**“रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।”**

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.64)

**सामाजिक जीवन में**, कर्मयोग सहयोग, सहिष्णुता और लोकहित की भावना को प्रोत्साहित करता है—

**“लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।”**

(श्रीमद्भगवद्गीता 3.20)

**व्यावसायिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र में**, कर्मयोग नैतिक नेतृत्व, पारदर्शिता और कर्तव्यनिष्ठा को सुदृढ़ करता है—

**“स्वधर्मो निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।”**

(गीता 3.35)

**“यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।”**

(गीता 3.21)

इस प्रकार कर्मयोग आधुनिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्यावहारिक, नैतिक और मानसिक मार्गदर्शन प्रदान करता है।

### 7.3 सीमाएँ एवं संभावनाएँ

#### सीमाएँ

कर्मयोग का शास्त्रीय स्वरूप मुख्यतः आध्यात्मिक दृष्टि पर आधारित है, जिसके प्रत्यक्ष प्रयोग में व्यावहारिक चुनौतियाँ सामने आती हैं। निष्काम कर्म को वास्तविक जीवन में अपनाना सरल नहीं है, क्योंकि आधुनिक समाज में प्रतिस्पर्धा और



फल-आसक्ति को अनिवार्य माना जाता है। साथ ही, कर्मयोग की गलत व्याख्या इसे आलस्य या निष्क्रियता का बहाना भी बना सकती है।

### संभावनाएँ

इसके बावजूद कर्मयोग में व्यापक संभावनाएँ निहित हैं। यह मानसिक शांति और आत्मिक संतुलन प्रदान करता है, सामाजिक जीवन में नैतिक उत्तरदायित्व और सहयोग की भावना को प्रोत्साहित करता है तथा प्रशासनिक और व्यावसायिक क्षेत्रों में नैतिक नेतृत्व और पारदर्शिता की स्थापना में सहायक सिद्ध हो सकता है। साथ ही, यह कार्य और परिणाम के बीच संतुलन स्थापित कर व्यक्ति की निर्णय-क्षमता और आत्मसंयम को विकसित करता है।

**निष्कर्षतः**, कर्मयोग सिद्धांत आधुनिक जीवन में केवल आध्यात्मिक साधना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह व्यक्तिगत, सामाजिक और व्यावसायिक जीवन के लिए एक समग्र, व्यवहारिक और नैतिक जीवन-दर्शन प्रस्तुत करता है। वर्तमान युग में इसकी पुनर्व्याख्या न केवल प्रासंगिक है, बल्कि अत्यंत आवश्यक भी है।

### 8. निष्कर्ष

श्रीमद्भगवद्गीता में प्रतिपादित कर्मयोग सिद्धांत आज भी अपनी वैचारिक गहराई और व्यावहारिक उपयोगिता के कारण पूर्णतः प्रासंगिक है। प्रस्तुत शोध से यह स्पष्ट होता है कि परंपरागत आचार्य—शंकराचार्य, रामानुजाचार्य और माध्वाचार्य—ने कर्मयोग की व्याख्या मुख्यतः आध्यात्मिक मोक्ष या भक्ति-साधना के संदर्भ में की है। यद्यपि ये व्याख्याएँ दार्शनिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हैं, तथापि आधुनिक मानव जीवन केवल आध्यात्मिक स्तर तक सीमित नहीं रह गया है। आज का मानव सामाजिक, व्यावसायिक और मानसिक रूप से कहीं अधिक जटिल परिस्थितियों में जीवन यापन कर रहा है। इस शोध के प्रमुख निष्कर्ष निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं—

#### (क). व्यक्तिगत जीवन में कर्मयोग की प्रासंगिकता

कर्मयोग व्यक्ति को मानसिक संतुलन, आंतरिक शांति और आत्मसंयम प्रदान करता है। निष्काम भाव से किए गए कर्म व्यक्ति को फल-आसक्ति से मुक्त कर वर्तमान कर्म में पूर्ण रूप से संलग्न होने की प्रेरणा देते हैं। गीता का यह उपदेश आधुनिक जीवन में तनाव और असंतोष से मुक्ति का प्रभावी साधन सिद्ध होता है—

“कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।”

(श्रीमद्भगवद्गीता 2.47)

#### (ख). सामाजिक जीवन में कर्मयोग की प्रासंगिकता

कर्मयोग सामाजिक जीवन में नैतिकता, सहयोग और लोकहित की भावना को सुदृढ़ करता है। जब कर्म स्वार्थ से ऊपर उठकर लोककल्याण के भाव से किया जाता है, तब समाज में समरसता, न्याय और सामाजिक संतुलन की स्थापना होती है—

“लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि।”

(श्रीमद्भगवद्गीता 3.20)

#### (ग). व्यावसायिक एवं प्रशासनिक जीवन में कर्मयोग की प्रासंगिकता



व्यावसायिक एवं प्रशासनिक क्षेत्र में कर्मयोग नैतिक नेतृत्व, पारदर्शिता और उत्तरदायित्व की भावना को विकसित करता है। इस दृष्टि से कार्य केवल व्यक्तिगत लाभ या पद-प्रतिष्ठा का साधन न रहकर समाज-कल्याण और न्याय की स्थापना का माध्यम बन जाता है—

“स्वधर्मो निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।”

(गीता 3.35)

“यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।”

(गीता 3.21)

(घ). सीमाएँ एवं संभावनाएँ

यद्यपि कर्मयोग का व्यावहारिक अनुप्रयोग सरल नहीं है और निष्काम कर्म को अपना आधुनिक प्रतिस्पर्धात्मक जीवन में चुनौतीपूर्ण प्रतीत होता है, फिर भी इसकी संभावनाएँ अत्यंत व्यापक हैं। कर्मयोग मानसिक संतुलन, सामाजिक उत्तरदायित्व, व्यावसायिक नैतिकता और निर्णय-क्षमता के विकास का सशक्त आधार प्रदान करता है।

**अतः**, कर्मयोग सिद्धांत को आधुनिक जीवन में केवल आध्यात्मिक साधना तक सीमित न रखकर एक समग्र, व्यावहारिक और नैतिक जीवन-दर्शन के रूप में पुनर्व्याख्यायित किया जा सकता है। यह सिद्धांत आधुनिक मानव जीवन की जटिलताओं को संतुलित करने, कर्म और कर्तव्य के बीच सामंजस्य स्थापित करने तथा जीवन को अधिक अर्थपूर्ण और सार्थक बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

**निष्कर्षतः**, यह शोध प्रतिपादित करता है कि श्रीमद्भगवद्गीता का कर्मयोग सिद्धांत न केवल प्राचीन भारतीय दार्शनिक परंपरा का प्रतिनिधित्व करता है, बल्कि वर्तमान युग में जीवन-प्रबंधन, नैतिक मूल्यों और मानसिक शांति के लिए भी अत्यंत प्रासंगिक और उपयोगी है।

## संदर्भ-सूची

1. शंकराचार्य. *श्रीमद्भगवद्गीता भाष्य*. केरल: श्रीमत् प्रेस, 2008।
2. रामानुजाचार्य. *गीता भाष्य*. तमिलनाडु: रामानुजा पुस्तकालय, 2010।
3. माध्वाचार्य. *गीता तात्पर्य*. उत्तर प्रदेश: माध्वाचार्य ग्रंथालय, 2012।
4. श्रीमद्भगवद्गीता. संस्कृत मूल पाठ। भारत: गीता प्रेस, 2015।
5. राधाकृष्णन, सर्वपल्ली. *भारतीय दर्शन, खंड II*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 2006।
6. विनोबा भावे. *गीता में कर्मयोग और जीवन दर्शन*. महाराष्ट्र: विनोबा प्रकाशन, 1998।
7. महात्मा गांधी. *गीता और आज का व्यक्ति*. अहमदाबाद: सत्याग्रह प्रकाशन, 1945।
8. शर्मा, चंद्रधर. *भारतीय दर्शन का इतिहास*. नई दिल्ली: भारतीय दर्शन ग्रंथालय, 2002।